स्त्री विमर्श : अतीत और वर्तमान

डॉ. संध्या गर्ग,

एसोसिएट प्रोफेसर,
जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज, दिल्ली

स्त्री, सृष्टि का एक अनुपम तत्व, जिसे लेकर अनगिनत कविताएँ उक्तियाँ लिख दी गई हैं– 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते, रमन्ते तत्र' देवता से लेकर 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' जैसी पंक्तियों ने स्त्री को लेकर समाज की सोच को उद्धृत करने का प्रयास किया है। पर एक ओर स्थिति बिल्कुल विपरीत भी है जहाँ उसे केवल 'योनि' और 'ताड़न के अधिकारी' वर्ग में सम्मिलित कर दिया गया है। स्त्री को दोयम दर्जा दिया गया, शोषण किया गया और जीवन के मूलभूत अधिकारों से भी वंचित कर दिया, इसीलिए वह स्त्री जो जननी है, बहन, बेटी, पत्नी, मित्र है, अपने अधिकारों के बारे में सोचने के लिए विवश हो गई। औरतों की तरह रोना, चूड़ियाँ पहनना, त्रियाचरित्र जैसे मुहावरे उपहास उड़ाने के लिए तो हैं ही। साथ ही इस समाज में स्त्री की स्थिति को भी स्पष्ट करते हैं। महिलाओं के स्वभाव, विकास और प्रभाव से समाज घबराता है इसलिए अधिकतर चुटकुलों और व्यंग्य बाणों का शिकार उसने स्त्री को ही बनाया है।

विडम्बना है पर सच्चाई भी है कि सृष्टि और समाज की धुरी जिस स्त्री पर टिकी है उसे लेकर विमर्श की आवश्यकता हुई। किसी भी समाज की, संस्कृति की सही स्थिति का पता उस समाज में स्त्रियों की दशा को लेकर ही चलता है। भारतीय संदर्भ में देखें तो स्त्री को प्रारम्भ से सम्मान जनक दृष्टि से देखा गया है पर धीरे–धीरे स्थितियों में परिवर्तन आया है। सामंतीपुरूष ने स्त्री से उसका नाम, अतीत, अस्मिता सभी छीन कर अपने दिए नाम ओढ़ा दिए– किसी की बहन, बेटी... ।[1]

वैदिक काल में स्त्री की स्थिति सम्मानजनक थी। उसे अधिकार प्राप्त थे। समाज में पुरूष के समान उसकी भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। ऋग्वेद की रचना में 20 विदुषियों के योगदान का उल्लेख मिलता है। स्त्रियों को विवाह के उपरान्त रानी होने का आशीर्वाद मिलता था न कि घर में दासी बनके सबकी सेवा करने का। पुरूषों के साथ धार्मिक कृत्य जैसे यज्ञ आदि में स्त्री को बराबर सम्मान दिया जाता था। लेकिन वस्तुस्थिति में उन विदुषियों ने जिनकी ऋग्वेद के रचना में भूमिका रही यदि उनके योगदान का मूल्यांकन किया जाए तो वह रेत में सुई ढूंढने जैसा होगा। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 2006 मंत्रों में से केवल तीन मंत्र स्त्रियों ने रचे हैं और इन मंत्रों में भी काम को लेकर स्त्री की स्थिति की बात कही गई है, सपत्नी से डर की बात कही गई है, पति को अपनी ओर आकर्षित करने की बात कही गई है। कुछ गिनती की स्त्रियों ने जिनमें गार्गी और मैत्रेयी थी, शिक्षा प्राप्त की। स्त्रियों को उपहार स्वरूप दूसरें पुरूषों को भेंट किया जाता था, ऋण के लिए बंधक रखी जाती थीं। ऋग्वेद में कहा गया है– ''स्त्री का मन चंचल है, उसे नियंत्रण में रखना असंभव है।[2] केवल पति युक्त स्त्री ही श्रेष्ठ है। वह एक खेत के समान है जिसमें पुरूष का बीज बोया जाता है अर्थात् वह केवल सन्तानोतपत्ति के लिए ही उपयुक्त है। उपनिषद में कहा गया– ''न वै जाया यै कामाय जाया प्रिया भवति आत्मा– वस्तु कामाय जाया प्रिया भवति।'' स्त्री को अपनी रूचि के लिए पत्नी बनाया जाता है। मनुस्मृति को देखा जाए तो स्त्री के संदर्भ में इस पुस्तक की सोच

को ही स्त्रीविमर्श का आधा बनाया जा सकता है। उसे स्वतंत्र नहीं घूमना चाहिए, पति का हितचिंतन करना चाहिए, घर के कार्यों में कुशल, पति के घर में हमेशा निवास करना चाहिए, पति के करने के बाद भी उसे कर्मकांड करते हुए ही जीवन बिता देना चाहिए। उसका सम्पत्ति पर अधिकार नहीं है। स्कन्द पुराण में लिखा गया – ''अमंगलगें में विधवा सबसे अमंगल है।''[3]

रामायण युग में वाल्मीकि ने राम कथा के माध्यम से एक आदर्श स्थापित किया है। उस समय की स्त्री का भी प्रकारान्तर से हमें परिचय इस कथा के द्वारा मिल पाता है। देवीरूप में उसका पूजन, स्वर्ग की अलौकिक अप्सराओं के रूप में उसके सौंदर्य की चर्चा, पत्नी रूप में उसे सम्मान देने की बात रामायण में कही गई है। वाल्मीकि युग में स्त्री को शिक्षित होने का अधिकार था चाहे वह समाज के विशिष्ट वर्गों की स्त्रियों तक ही सीमित रहा हो। रामायण में वर्णित स्त्रियाँ सम्य आर्य जाति की ही स्त्रियाँ हैं। जहाँ वानरों की बात है वहाँ स्थिति भिन्न है। बाली और सुग्रीव के संदर्भ में बाली सुग्रीव की पत्नी में आसक्त रहता है, उसका अपहरण भी कर लेता है और वापिस होने पर सुग्रीव उसे स्वीकार कर लेता है। हनुमान वायुपुत्र हैं।

लेकिन इस सबके बाद भी सीता जो कि स्वयं राजकुमारी हैं, उनका एक मर्यादित रूप है वह राम की छाया भर है। पहले रावण के घर में रहने पर अग्नि परीक्षा और फिर धोबी के लांछन भरे कथन को सुनकर निष्कासन ऐसी घटनाएँ हैं जो स्त्री की सही स्थिति को साफ–साफ आईना दिखाती हैं। शूर्पणखा स्वतंत्र युवती है तो उसकी नाक काट दी गई है यह प्रतीकात्मक है स्वतंत्रता पर प्रहार रूप में। दूसरी ओर अहल्या पत्थर की शिला में परिवर्तित कर दी जाती है। ये सब तथ्य कहीं मन में इतने बड़े धार्मिक ग्रंथ में वर्णित आदर्शों के प्रति प्रश्न चिन्ह लगा देते हैं।

महाभारत युग में परिवर्तन दिखाई देता है, वह केवल आदर्शों की बात नहीं करता वह व्यक्ति की दुर्बलताओं और सबलता का खुला पत्र है। गांधारी, कुंती, द्रौपदी, अम्बा, अम्बालिका, सुभद्रा, उत्तरा, स्त्रियाँ इस युग की स्त्रीवादी सोच को प्रतिबिम्बित करती है। सत्यवती कौमार्य में व्यास को जन्म देती है। अम्बिका अम्बातिका की संतान धृतराष्ट्र और पाण्डू नियोग से उत्पन्न है। कुंती कर्ण को विवाहपूर्व दो जन्म देती है और उसकी बाकी संतानों की पति की संतान नहीं है। द्रौपदी का पाँच पांडवों से विवाह एक ऐसी घटना है जो स्त्री स्वतंत्रता, चमय की इच्छा पर प्रहार है। केवल माँ का आदेश पालन करने हेतु एक स्त्री का पाँच पतियों द्वारा उपभोग, धर्मपालन के नाम पर उसी पत्नी को चीरहरण देखना और स्वर्गागमन में उस पत्नी के मन में सभी पतियों के प्रति समान अनुराग भाव न होने के कारण सबसे पहले समाप्त हो जाना विचारणीय प्रसंग हैं। अपनी पत्नी को दाँव पर लगाने वाले युधिष्ठिर को धर्मराज कहना अनुचित लगता है। द्रौपदी प्रश्न भी करती है कि जो पुरूष स्वयं को हार चुका हो वह अपनी पत्नी को कैसे दाँव पर लगा सकता है? मूल रूप से स्त्रियों की दशा में पतन प्रारंभ हो चुका था।

उपरोक्त दो मूल आदि ग्रंथों के बाद संस्कृत साहित्य के प्रतिनिधि कवि कालिदास ने 'कुमार संभव' में पार्वती को शिव को पाने की तपस्या में लीन युवती के रूप में चित्रित किया है। पार्वती का शिव सम्मान करते हैं, उनकी तपस्या की पराकाष्ठा देखकर। एक पति के रूप में पार्वती से प्रेम करते हैं और इसीलिए गौरी–पूजन भारतीय युवतियों के लिए एक प्रमुख आराधना है कि उन्हें शिव सा पति मिले। कालिदास द्वारा रचित रघुवंश में स्त्री को पत्नी के रूप में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बताया गया है। अभिज्ञान शांकुतलम में शकुंतला केवल एक मुद्रिका के न मिलने के कारण पति द्वारा अस्वीकृत हो जाती है, उसका स्वयं का व्यक्तित्व कुछ नहीं है चाहे इसके लिए कवि ने सहारा श्राप

का और भूल जाने का लिया है।

संस्कृत साहित्य के बाद आदिकालीन डिंगल व पिंगल साहित्य में नारी का कामिनी रूप तो चित्रित है ही, वीर काव्यों की शैली के अनुरूप नारी का वीरांगना रूप भी इन काव्यों में दिखाई देता है। आदिकाल में स्त्रियाँ युद्धों का एक कारण रही है। इस युग में धार्मिक साहित्य में भी नारी को बहुत सम्मानजनक रूप से नहीं देखा गया। विद्यापति की पदावली में नारी सौंदर्य में नख–शिख वर्णन को भोग्या की ही छवि देता है। बाह्य एवं आन्तरिक कारणों से उसका जो रूप बना उसमें दो भावनाएँ प्रधान थीं– शौर्य व श्रृंगार।

भक्ति कालीन संत कवियों ने तो स्त्री को माया कह कर त्याग देने की बात कही है। उसे नरक का कुण्ड, सर्पिणी जिसकी छाया पड़ते ही साँप अंधा हो जाता है, कहा गया पर साथ ही इन कवियों ने स्वयं को स्त्री कह कर ब्रह्म को एक मात्र पुरूष माना है। राम भक्त तुलसी ने सीता और कौशल्या के माध्यम से पतिव्रता स्त्री को ही महत्ता दी है, नहीं तो वे भी उदार दृष्टिकोण नहीं रखते। सूर की गोपियाँ प्रेम करना जानती हैं पर स्वतंत्र वे भी नहीं है। राधा कृष्ण से प्रेम करती है इसलिए वे देवी नहीं है हिंदु धर्म की। मीरा के काव्य में भी जो भक्ति है वह भक्ति के साथ–साथ उस सामंतवादी व्यवस्था में स्त्री की स्थिति भी बताती है। जहर का प्याला पीने वाली मीरा भक्ति में भी गाती हैं तो यही कहती हैं– ''मोहे चाकर राखो जी'' यह पंक्तियाँ स्त्री के स्वतंत्र रूप का चित्रण तो नहीं है।

रीति युग तो श्रृंगार और वैभव का ही युग है। इन कवियों ने श्रृंगार रूप में नारी का जो चित्रण किया है उसमें तो नारी का प्रेयसी रूप ही अधिक है, उसका पत्नी रूप, मातृरूप या भगिनी रूप वर्णित नहीं है। उसे या तो प्रेम में आकंठ डूबी नायिका का चित्र दिया गया है या फिर विरह नायिका जो कि स्वयं के अस्तित्व बोध से परे केवल पति या प्रिय की याद में जीती या मरती है। नारी के नयन, केश, अधर, उरोज यही काव्य का विषय रहे हैं। वह सामन्तवादी सोच के सहारे ही नारी का वर्णन करते हैं।

आधुनिक युग में स्त्री की दशा के बारे में समाज–सुधारकों और कवियों की दृष्टि गई है। बाल विवाह, विधवा प्रथा, सती प्रथा, स्त्री जैसी समस्याओं ने समाज का ध्यान खींचा और इसी संदर्भ में स्त्री दशा सुधार के प्रयत्न भी प्रारंभ हुए। राजा राम मोहन राय, एनी बेसेंट, ईश्वरचंद्र विद्यासागर आदि समाज सुधारकों ने स्त्री को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक व राजनीतिक स्वतंत्रता प्रदान करने का प्रयास किया। आधुनिक कवियों ने भी इसी भाव की अभिव्यक्ति की–

वीर प्रसविनी बुध बधू होइ दीनता खोय

नारी नर अरधंग की सांचेहिं स्वामिनी होय।।[4]

भारतेन्दु युग के कवियों ने स्त्री को उस श्रृंगार की सुंदर काल कोठरी से मुक्त कर सामान्य जीवन के साथ जोड़ा। श्रृंगार का वर्णन भी सहज रूप से किया और द्विवेदी युग में तो स्त्री पूर्ण रूप से पुरूष की सामाजिक एवं राजनीतिक सहयोगी बन गई है। उसकी पीड़ा और समस्याओं को एक नया स्वर देने का प्रयास किया गया है–

कन्याकुल को भाँति–भाँति से पीड़ित हम नित करते हैं

मुनियों का वंशज होने तिस पर भी दम भरते हैं।[5]

उर्मिला, यशोधरा, सीता, धार्मिक कथाओं के स्त्री पात्र यहाँ केवल पति की छाया भर नहीं रही बल्कि स्वतंत्र व कर्मठ स्त्री हैं। वे पति के वियोग या वन गमन जैसी घटनाओं में दुःखी नहीं हैं बल्कि समय को समाज कल्याण के कार्यों में लगाती हैं। वे अपने अस्तित्व के प्रति चिंतित नहीं है बल्कि गौरवान्वित हैं–

यदि न जगत में होवें हम तो नाश नरों का हो जावे

रखी रहै बुद्धि विद्यालय काम नहीं कुछ भी आवे

ध्रुव, प्रहलाद, व्यास, शंकर ने जन्म हमीं से पाया है।

मनुज रत्न हुए सभी को हमने गोद खिलाया है।[6]

छायावाद को विचारकों ने रीतिकाल की पुनरावृत्ति कहा है क्योंकि श्रृंगार और भावों का, प्रकृति का चित्रण इस काव्य की प्रवृत्ति रही है। स्त्री के सौन्दर्य और उसके प्रेयसी रूप की अभिव्यक्ति यहाँ अधिक हुई है। उसके कल्याणकारी रूप की चर्चा में कवियों का मन अधिक नहीं रमा है। लेकिन फिर भी प्रेयसी का रूप प्रेम के सूक्ष्म और आदर्श भाव की अभिव्यंजना में सहायक है न कि काम भावनाओं को प्रसूत करने में। प्रसाद की कामायनी, निराला की सरोज स्मृति ऐसी कविताएँ हैं जहाँ स्त्री एक सहायिका और प्रेरक भी है।

प्रगतिवाद और प्रयोगवादी साहित्य में स्त्री मजदूर भी है वह पत्थर तोड़ती है, खेती करती है और अपने अधिकारों के लिए लड़ती हैं, उसके लिए कवि नये नये उपमान खोजने की कोशिश करता है ताकि उसके रूप और गुणों को सही अभिव्यक्ति दिखा सके।

वस्तुतः स्त्री की सत्ता और महत्ता को अस्वीकार करना अत्यंत कठिन है और जहाँ कवियों ने स्त्री को उसके गौरव और सम्मान के साथ स्वीकार किया है वहीं काव्य श्रेष्ठ भी बन पाया है। आधुनिक साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान को स्वीकृति दिलाने के लिए स्वयं महिला साहित्यकारों ने भी कलम उठाई है वस्तुतः स्त्री मानसिता के ये सारे परिवर्तन शुरू हुए तब जब स्त्री ने स्वयं अपनी कहानी कागज पर लिखनी शुरू की। वे उसके कन्फेंशस थे, अपने आपको अपने से बाहर निकालकर तटस्थ हो कर दूसरों की निगाह से देखना था। तभी वह अपना अपमान करने वाली पुरूष की गालियों के अर्थ छीन कर अपने अर्थ और मतव्य भर सकती थी। दी हुई भाषा के मुहावरे बदल सकती थी।[7] सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा और उपन्यासकारों में अमृता प्रीतम (रसीदी टिकट, यह सच है, जेब कतरे) मैत्रेयी पुष्पा (स्मृति दंश, बेतवा बहती रही), मृदुला गर्ग (उसके हिस्से की धूप, वंशज, चित्तकोबरा) कृष्णा सोबती (मितरो मरजानी, डार से बिछुड़ी) मन्नू भंडारी (एक इंच मुस्कान, स्वामी) जीलानी बानो (जुगनू और सितारे, नगमे) पद्मा सचदेव (अब न बनेगी देहरी, नौशीन) ऐसे कई प्रमुख नाम हैं जोकि रूढ़िवादी सोच के विरोध में स्त्री जीवन की मौलिक व निर्भीक अभिव्यक्ति के लिए खड़े हुए हैं।

स्त्री विमर्श कोई नारा या आंदोलन नहीं है बल्कि यह सदियों से पुरूष प्रधान समाज में अपने अस्तित्व की पहचान की लड़ाई है जो मुक्ति नहीं चाहती, समाज में समानता का अधिकार चाहती है। काली और दुर्गा हमारी आराध्या है क्योंकि वे समर्थ हैं, स्वतंत्र हैं, अपने लिए स्वयं लड़ना जानती है किसी के कंधे का सहारा नहीं लेती। दूसरी ओर सीता या लक्ष्मी राम और विष्णु के साथ प्रतिष्ठित हैं लक्ष्मी धन की देवी हैं पर शेषनाग पर विराजमान विष्णु के चरणों में बैठी है। यह अंतर स्त्री विमर्श के मर्म को उद्घाटित करता है। स्त्री को लगा कि उसे देवी बनाकर रखना भी वास्तव में उसके शोषण का ही एक रूप है। देवियों जैसा महात्म्य देकर उनसे त्याग, सहिष्णुता और जगत कल्याण की कामना की जाती है और अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी ओर न झाँकें। दूसरी ओर स्त्री के सहज मनोविज्ञान को जानने समझने वालों ने उसकी मूल शक्ति को उसकी भावुकता, ईर्ष्या, चंचलता जैसे भावनात्मक उपादानों के बीच दबाने की कोशिश की। दूसरी स्त्रियों के प्रति– ''नारी न सोहे नारी के रूपा'' जैसी उक्तियों ने उसकी मानसिक शक्ति का ह्रास किया। नासिरा शर्मा ने लिखा है– ''स्त्री को अपने प्रति जागरूकता लानी पड़ेगी और जब वह अपने प्रति जवाबदेह होगी तब वह दूसरी औरत के प्रति भी संवेदनशील होगी। उसके सुख–दुःख को पुरूष आँखों से नहीं

बल्कि इन्सानी आँखों से देखेगी।''[8]

वास्तव में स्त्री होने के अपराधबोध और सामाजिक असुरक्षा के साथ अनैतिक हो जाने के भय से स्त्री मनोविज्ञान का निर्माण किया है। एक ओर भारतीय आदर्शों को वहन करती है तथा दूसरी ओर पश्चिम की जीवन शैली भी उसे आकर्षित करती है। इसी सबने उसे विवश किया कि वह अपने आप को खोजना प्रारंभ करे कि वह क्या चाहती है। स्त्री विमर्श का यही मूल है। ''स्त्री विमर्श का कर्तव्य सिर्फ स्त्री की मुक्ति नहीं, पुरूष को भी उनके मुद्दों और वर्जनाओं से युक्त करना है जो स्त्री पर पुरूष–वर्चस्व को सही ठहराती है।''[9]

Copyright © 2017 *Dr. Sandhya Garg*. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.

[1] वे हमें बदल रहे हैं, राजेंद्र यादव, संपा. बलवन्त कौर, पृष्ठ 127

[2] ऋग्वेद, 8.33.17

[3] स्कन्दपुराण 4/55/75

[4] भारतेन्दु–हरिश्चन्द्र, बालबोधिनी

[5] महावीर प्रसाद द्विवेदी, काव्य माला, पृष्ठ 436

[6] वही, पृष्ठ 424–25

[7] वे हमें बदल रहे हैं, राजेंद्र यादव, संपा. बलवन्त कौर, पृष्ठ 131

[8] आँख के लिए औरत, नासिरा शर्मा, पृष्ठ 9

[9] वे हमें बदल रहे हैं, राजेंद्र यादव, संपा. बलवन्त कौर, पृष्ठ 137